राष्ट्र निर्माण में महात्मा गाँधी की बुनियादी तालीम

डॉ0 उत्तरा यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग,
महिला कालेज,लखनऊ

शोध सारांश

गाँधी जी का मानना था कि ''जो चित की शुद्धि न करे, मन और ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखना न सिखाए, निर्भयता और स्वावलम्बन पैदा न करें, निर्वाह का साधन न बताए और गुलामी से छूटने और आजाद रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाए, उस शिक्षा में चाहे जितनी जानकारी का खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा–पांडित्य मौजूद हैं, वह शिक्षा नहीं है, या अधूरी शिक्षा है।''गाँधी जी की शिक्षा दर्शन आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है। विज्ञान, शोध, प्रौद्योगिकी ने निःसंदेह हमारे समाज को बदला है, जीवन की राह को आसान बनाया है, परन्तु इस वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति का एक स्याह पक्ष भी है। भौतिक विकास की दिशाहीन दौड़ में हमारी युवा पीढ़ी गौरवशाली भारतीय संस्कृति, संस्कार और आध्यात्मिक मूल्यों की विरासत से दूर होती दिखाई दे रही है, जिसका परिणाम है कि आज की युवा पीढ़ी में जीवन में आने वाली चुनौतियों, परिस्थितियों और समस्याओं का सामना करने में मानसिक रूप से कमजोर है। उनमें मूल्यों और जीवन में चुनौतियों का सामना करने वाले संस्कारों का अभाव दिखाई देता है। हमारे संस्कार और जीवन में अपनाये गये आध्यात्मिक मूल्य ही जीवन में आने वाली परिस्थितियों और चुनौतियों को सफलतापूर्वक सामना करने में हमें आत्मिक रूप से समर्थ और बलशाली बनाते हैं।

Keywords : *ऋगवेद, ध्येय, तार्किकता, संस्कृति, आध्यत्मिक मूल्य, तालीम, समृद्धि, ज्ञान*

ऋग्वेद के अनुसार ''आ नो भद्राः कृतवो यन्तु विश्वतः।'' अर्थात ज्ञान का भोका चारो ओर से आने दो और ज्ञान जहॉं से भी मिले, उसे लिया जाना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें हमेशा उदारता दिखानी चाहिए। न कि संकीर्णता। हमारे जीवन के संविधान की ज्ञान की धारा ने ही हमें विश्वगुरू का दर्जा दिलाया था। लेकिन यह हमारा और हमारे देष का दुर्भाग्य था, जब हमने इंग्लैंड से देशभक्ति दिखाते हुए सन् 1835 ई0 में लार्ड मैकाले द्वारा प्रस्तावित अंग्रेजी शिक्षा पद्धति लागू करके भारतीय ज्ञान–विज्ञान, सांस्कृतिक विरासत और संस्कृति की शिक्षा को ही पाठ्यक्रम से हटा दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा नीति का लक्ष्य ही था कि लोग शरीर से भारतीय हों, परन्तु मानसिक रूप से अंग्रेजीसरकारएवं अंग्रेजी संस्कृति के गुलाम बन जायें। अंग्रेजों के यहॉं से जाने के बाद अभी भी अंग्रेजी की गुलामी मानसिकता से हमें मुक्ति नहीं मिली है। आज भी हम हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा विदेशी भाषा एवं विदेशी तौर–तरीकों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। अंग्रेजों ने, हमारी शिक्षा–व्यवस्था को सुनियोजित ढंग से नष्ट कर दिया। उन्होंने दिमागी तौर पर भारत को पंगु बनाने की योजना को भारत में लागू कर दिया और वे इसमें सफल रहे। अंग्रेजों की शिक्षा–व्यवस्था एकांकी है, जिसमें अक्षर–ज्ञान पर जोर है। दिमाग को तो खुराक मिली, पर हाथ बेगार हो गया। हाथ के बेगार होने से शिक्षा का संतुलन बिगड़ गया।

गॉधी ने अंग्रेजी शिक्षा–व्यवस्था की खामियों और अपनी परंपरागत शिक्षा–पद्धति के अच्छे तत्त्वों को भी समझ लिया था। अच्छी बात यह है कि विश्वव्यापी महामारीकोविड–19 के कारण देश–विदेश में आज आयुर्वेदिक तथा मूल्यपरक शिक्षा एवं तद्नुसार आचरण की बात जोर पकड़ रही है। चाहे आतंकवाद की समस्या हो, मौसम–परिवर्तन की चुनौती हो, वैश्विकता के विरोध को दूर करने का विषय हो, सामाजिक–आर्थिक विषमता दूर करने का विषय हो या डिजिटल डिवाइड को कम करने की बात हो, हर चुनौती का मुकाबला मूल्य आधारित शिक्षा से किया जा सकता है।''

''राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी का आदर्शवादी व्यक्तित्व और कृतित्व सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में पिरोकर प्रगतिशील मूल्य परक शिक्षा की वकालत करता है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओत–प्रोत था। सभी को शिक्षित होना चाहिए क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असम्भव है। नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से महात्मा गॉधी के सपनों को पूरा करने का सार्थक प्रयास होना चाहिए।विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में युवाशक्ति के बल पर एक नये भारत का नवनिर्माण करने के लिए मूल्य और आध्यात्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना समय की आवश्यकता है और यही गॉधी जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।''

''गाँधी की और मूल्यपरक शिक्षा–महान् गाँधीवादी नेता और दक्षिण अफ्रीका के पूर्व राष्ट्रपति नेल्सन मण्डेला ने कहा कि, ''शिक्षा वह हथियार है, जिससे दुनिया बदली जा सकती है।''विश्वगुरू रहें भारत में ज्ञान की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है और भारत ने पूर विश्व को ज्ञान–विज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया है। दुनिया भर के विद्वान् अखण्ड भारत में ज्ञानार्जन और अपनी विद्वत्ता को धार देने के लिए आते रहे हैं। तक्षशिला, वल्लभी और नालंदा विश्वविद्यालय समेत कई ऐसे प्रकाश–स्तम्भ थे, जहाँ धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तुकला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, दर्शन, संस्कृति और संस्कार के प्रकाश से पूरा विश्व आलोकित होता था। कई देशों से विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करने के लिए आते थे। समय बदला, इसके साथ ही भारत का इतिहास भी बदला। विदेशी आक्रांताओं ने भारत पर कई सौ वर्षों तक शासन किया और उन्होंने अपनी सत्ता की सम्पूर्ण ताकत से भारतीय संस्कृति, अध्यात्म और चेतना की विरासत को कुचलने का प्रयास किया। आज आधुनिकता की दौड़ में हम परिवार के अंदर ही बॅटकर रह गये हैं, मूल्यों की अनदेखी कर हम अनैतिकतावादी प्रगति को सर्वोपरि मान रहे हैं। खुद को हमने कम्प्यूटर तक सीमित कर लिया है और स्मार्टफोन को ही अपनी दुनिया मान बैठे हैं।यह समृद्ध परंपरा प्राचीन काल से मध्यकाल और आगे आधुनिक काल तक, अंग्रेजों के आने तक चलती रही। इसके स्वरूप और पद्धति में थोड़ा–बहुत बदलाव जरूर आया, पर शिक्षण की समृद्ध परंपरा अनवरत चलती रही। लेकिन अंग्रेजों ने इस समृद्ध परंपरा को सूझबूझ के साथ तोड़ दिया। उन्हें इस बात का ज्ञान हो गया था कि भारत को गुलाम बनाना है तो यहाँ की सबसे मजबूत शिक्षण व्यवस्था को तोड़ना होगा। भारत में हमारी शिक्षण परंपरा में अक्षर–ज्ञान के साथ लोक–व्यवहार की नैतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षण सहित सभी पहलुओं में पारंगत करने की व्यवस्था थी। आज हम अपनी उसी जड़ को तलाशने की कोशिश कर रहे हैं।''

''नैतिकता की इस चुनौती का मुकाबला हम केवल मूल्यों एवं संस्कारों के आधार पर कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति–संस्कार परम्परा से उपजे ये शाश्वत मूल्य हमारी हर चुनौती में मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। इन जंजीरों और बेड़ियों से बाहर निकलने में बापू के विचार हमारे लिए संजीवनी साबित हो सकता हैं। गॉधीजी जो

कहते थे, वह करते थे, उसे यथार्थ में जीकर दिखाते थे। गॉधीजी सदैव भारतीय संस्कृति परम्पराओं के समर्थक रहे। वे भारतीय संस्कृति को असाधारण और तथ्यपूर्ण मानते थे।''

''भारतीय संस्कृति एवं विरासत में सर्वत्र 'गुरु–शिष्य परम्परा' का परिदृश्य देखने को मिलता है। विश्व में अपने किस्म की विलक्षण गुरुकुल परम्परा से हमने शिक्षा में मानवीय मूल्यों का समावेश कर नागरिकों के श्रेष्ठ चरित्र–निर्माण में सफलता पाई। शिक्षा पर गॉधीजी का चिंतन परम उच्च सत्य तक पहुॅचाने का था। अगर हम उनके योगदान पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि उन्होंने जो भी काम उठाया या जो भी सुझाव दिया, उसे उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर जीवन में सफलतापूर्वक उतारा। गॉधी जी की सबसे बड़ी ताकत उनका नैतिकता से गहरा सम्बन्ध और सत्य के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी। गॉधीजी उन मूल्यों की बात करते थे, जो जीवन की आधारशिला है। 'माता–पिता के लिए आदर', 'अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनना', 'दिल में करुणा का होना' और 'साम्राज्य से मुक्ति के लिए संघर्ष के संदर्भ में निडरता का होना' जैसी बातें उनके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं। अपने व्यक्तिगत प्रयोगों एवं जीवन के अनुभवों से उन्होंने कुछ सिद्धान्त बनाये और सबके साथ बॉटे।''

''गॉधीजी ने सदैव धार्मिक ग्रंथों एवं भारतीय संस्कृति–परम्परा से प्रेरणा पाने की बात कही। भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत की जड़ें इतनी गहरी और कालजयी हैं कि विदेशी आंक्रांताओं एवं सत्ता की क्रूर तलवारें भी इनके आगे खुद हार गईं।यह भारतीय नीति नवाचार युक्त होने के साथ भारत केन्द्रित भी है। श्रेष्ठजनों के व्यक्तित्व और कृतित्व से हमारे उपेक्षित एवं कमजोर वर्ग के लोग कैसे लाभान्वित हो पायेंगे, यह विचार करने का यह सबसे उपयुक्त समय है?''

''गॉंधी की बुनियादी शिक्षा अथवा नई तालीम–'शोषण–विहीन समाज की स्थापना' करना गांधी जी का मूल ध्येय था। शोषण विहीन समाज के निर्माण के लिए नीतिपरक शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शायद यही कारण था कि गॉंधी जी ने शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या कर देश के लिए प्रारम्भिक शिक्षा–योजना का खाका प्रस्तुत किया। गॉंधीजी ने देश की एक नई शिक्षा–प्रणाली 'बुनियादी–शिक्षा' या नई तालीम, के रूप में दी है। उनके अनुसार बुनियादी–शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो जीवनोपयोगी शिक्षा ग्रहण करने के साथ–साथ स्वयं का खर्चा भी चला सके। उनकी नई तालीम तीन बिन्दुओं यथा 1.शिक्षा स्वावलम्बी हो ताकि विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने के साथ–साथ स्वयं का खर्चा भी चला सके 2. बुनियादी–शिक्षा कौशल युक्तदस्तकारी के आधार पर होनी चाहियेतथा 3. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा होनी चाहिये।''

''महात्मा गॉंधी दक्षिण अफ्रीका से भारत तक के सम्पूर्ण जीवन में शिक्षा–व्यवस्था को बेहतर करने की कोशिश करते रहे। महात्मा गॉंधी अपने रोजगार के लिए दक्षिण अफ्रीका गए थे। वहॉं उन्होंने भारतीयों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ संघर्ष शुरू कर दिया। गॉंधी जी यहीं से अपने जीवन में अलग–अलग तरह के प्रयोग शुरू किए। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रयोग किया। गॉंधीजी ने अफ्रीका में 'टालस्टॉय फार्म' की स्थापना की। कैलनवाघ की सहायता से टालस्टॉय फार्म में पठन–पाठन का काम शुरू कर किया। यहॉं की शिक्षा का उद्‌देश्य था 'आत्मा का विकास।' गॉंधी जी कहते हैं, ''आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान पाना, आत्मज्ञान प्राप्त करना।''इससे आगे बढ़ते हुए वे कहते हैं, ''यदि ऐसी शिक्षा दी जाए तो उसका सीधा परिणाम यह होगा कि वह शिक्षा स्वावलंबी होगी।

''शिक्षा के क्षेत्र में आज भारत में व्यापक बदलाव आया है। आजादी के बाद सात दषक बाद तक यह व्यवस्था नहीं बन पाई है, जिसमें विद्यार्थी पढ़ाई के साथ–साथ हुनर भी सीख सकें। दरअसल हमारी शिक्षा–व्यवस्था ने ऐसे विद्यार्थियों को पढ़ाया और आगे बढ़ाया, जो सिर्फ अक्षर–ज्ञान लिये हुए हैं। महात्मा गांधी के शिक्षा–दर्शन के अनुरूप उनकी शिक्षा नहीं हुई। तात्पर्य यह है कि समाज में ऐसे युवाओं की संख्या बढ़ी है, जो डिग्री तो प्राप्त कर रहे हैं, परंतु व्यवस्था के अनुरूप उनकी शिक्षा नहीं हो पा रही है।''

''कौशल परक स्वावलम्बी शिक्षा– आज देश में ऐसी शिक्षा–पद्धति की जरूरत है, जिसमें श्रम और बुद्धि का समन्वय हो और स्वरोजगार परक हो। सिर्फ अक्षर–ज्ञान पर आधारित शिक्षा से युवा समाज और आर्थिक व्यवस्था को संबल नहीं दे सकते हैं। स्वावलम्बी शिक्षा के बारे में बापू का मत है कि''हमारे स्कूल और कॉलेज पूरे नहीं तो करीब–करीब स्वावलम्बी हो जाने चाहिए। विद्यार्थियों को खुद कुछ ऐसा काम करते रहना चाहिए, जिससे आर्थिक प्राप्ति हो और इस तरह स्कूल तथा कॉलेज स्वावलम्बी बनें। औद्योगिक तालीम को अनिवार्य बनाकर ही ऐसा किया जा सकता है।विद्यार्थियों को साहित्यिक तालीम के साथ–साथ औद्योगिक तालीम भी मिलनी चाहिए।लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमारे विद्यार्थी श्रम का गौरव अनुभव करना सीखें और हाथ–उद्योग के अज्ञान को समाज में अप्रतिष्ठा का चिन्ह समझने का रिवाज पड़े। विद्यार्थी अपनी शिक्षा के लिए परिश्रपूर्वक उद्योग किया हो और इस तरह अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने के साथ–साथ अपनी बुद्धि, शरीर और आत्मा का विकास भी सिद्ध किया हो तो ऐसा कौन है जो अपने उन दिनों को गर्व से याद न करेगा?''

''आज बच्चों को पढ़ाई के साथ–साथ उनके हाथों को हुनरमंद बनाना जरूरी है। अक्षर–ज्ञान मुनष्य को एक समझ देता है, वहीं हुनर का ज्ञान मनुष्य को सफल एवं सार्थक जीवन देता है, जो अपने पैरों पर खड़े होकर समाज और राष्ट्र के निर्माण में सहायक हो सकेंगे। अक्षर–ज्ञान की तुलना में हाथ की शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए गाँधी 15 मार्च, 1935ई0 में 'हरिजन' में लिखते हैं''मेरी राय में तो इस देश में, जहाँ लाखों आदमी भूखों मरते हैं, बुद्धिपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है। अक्षर–ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। हाथ से काम करने की क्षमता हस्त–कौशल ही तो वह चीज है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। लिखना–पढ़ना जाने बिना मनुष्य का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है। इसमें कोई शक नहीं कि अक्षर–ज्ञान से जीवन का सौंदर्य बढ़ जाता है, लेकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता।'' गाँधीजी शिक्षा का विकास का उद्देश्य बुद्धि विकास तक सीमित नहीं मानते, उनकी दृष्टि में शारीर के साथ–साथ आत्मा का विकास भी शिक्षण का अंग होना चाहिए।'' वे 31 जुलाई,सन् 1937 ई0 के 'हरिजन' में लिखते हैंः– ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक की, प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्धरित किया जाए और बाहर प्रकाश में लाया जाए। अक्षर–ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है और न उसका आरंभ। यह तो मनुष्य की शिक्षा के कई साधनों में से केवल एक साधन है। अक्षर–ज्ञान पाना शिक्षा नहीं है, इसलिए मैं बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरंभ करे, उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करूँगा। मेरा विष्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा–प्रणाली में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास संभव है।''

''वर्ष सन् 1937 ई0 में वर्धा में 'अखिल भारतीय शैक्षिक सम्मेलन' आयोजित हुआ। इस सम्मेलन की अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले महानुभावों में थे– विनोबा भावे, काका कालेलकर तथा जाकिर हुसैन जैसे विद्वान और शिक्षा शास्त्री, जिन्होंने इस सम्मेलन के उपरांत एक प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव में मोटा–मोटी तीन बिंदुओं पर अधिक जोर दिया गया यथा 1. बच्चों को 7 वर्ष तक राष्ट्रव्यापी, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जाए, 2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो और 3. सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि इस दौरान दी जाने वाली शिक्षा हस्तशिल्प या उत्पादक कार्य पर केंद्रित हो। अन्य सभी योग्यताओं का विकास, जहाँ तक संभव हो, बच्चों के पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए बालक द्वारा चुनी हुई हस्तकला से सम्बन्धित हो। इसकी आवश्यकता के संदर्भ में गाँधीजी कहते हैं, ''शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था न सिर्फ फिजूलखर्ची वाली है, बल्कि सचमुच ही नुकसानदायक भी है। लड़के अपने अभिभावकों से, अपने गाँवों से, अपने पारंपरिक कौशलों से बिछुड़ जाते हैं। वे बेचारगी में छोटे–मोटे बाबूगीरी वाले कामों पर निर्भर हो जाते हैं और तो और बुरी आदतें व शहरी नकचढ़ापन अपना लेते हैं तथा गाँव में किए जाने वाले सारे शारीरिक श्रम को, जिन पर हम सभी निर्भर हैं, तुच्छ समझने लगते हैं।''

''वर्धा सम्मेलन के सभी प्रस्ताव को फरवरी–मार्च सन् 1938 ई0 के सालाना बैठक में 'राष्ट्रीय शिक्षा–नीति' के तौर पर मंजूर कर लिया गया। 'हिंदुस्तानी तालीम संघ' के नाम से एक स्वाधीन 'राष्ट्रीय शैक्षिक परिषद्' की स्थापना की गई, जिसका कार्य था– व्यावहारिक कार्यक्रम का विकास करना और मार्गदर्शन देना।इस सम्मेलन में मातृभाषा के संदर्भ में विशेष जोर दिया गया। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को बनाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका के टाल्सटॉय फार्म के बच्चों को भी उन्होने गुजराती, हिंदी आदि उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने की कोशिश की थी। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा के बजाय मातृभाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा ही उन्हें अत्यधिक सहज–स्वाभाविक लगी। 15 अक्तूबर,सन् 1917 ई0 को बिहार के भागलपुर में छात्र–सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा, ''मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के बराबर है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह देशभक्त कहलाने लायक नहीं है। बहुत से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि हमारी भाषा में ऐसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे ऊँचे विचार प्रकट किए जा सकें, किंतु यह भाषा का दोष नहीं। भाषा को बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। जब तक हमारी मातृभाषा में हमारे सारे विचार प्रकट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा में नहीं समझाए जा सकते, तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा।'' ''महात्मा गाँधी इस शिक्षा–पद्धति (नई तालीम) को सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ समाज के नव–निर्माण का सबसे प्रमुख आधार मानते थे। नई तालीम का विचार न सिर्फ भारत के संदर्भ में प्रासंगिक रहा, बल्कि दुनिया को भाईचारे, शांति और मानव समाज के कल्याण के लिए आवश्यक रहा। गाँधी जी की शिक्षा–पद्धति में आध्यात्मिकता, नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा का समावेश था। गाँधीजी बच्चों को स्वावलंबी बनाने के साथ–साथ एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे कि प्राथमिक स्कूल भी इस सीमा तक स्वावलंबी हो जाएँ कि आध्यापकों का वेतन विद्यालयों में बच्चों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बेचकर दिया जा सके। एक ऐसी व्यवस्था बने, जिसमें सभी स्तर पर स्वावलंबन हो।''

''दुनिया के सामने गाँधीजी के बताए रास्ते पर चलने के अलावा कोई और मार्ग नहीं। आबादी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और बेरोजगारी का स्तर भी उसी अनुपात में बढ़ रहा है। जिस पूँजीवादी व्यवस्था को हमने अपनाया, उस व्यवस्था में सभी के लिए रोजगार–सृजन की

क्षमता नहीं थी। दरअसल शिक्षित युवाओं को काम नहीं मिल पा रहा है। इसकी वजह तलाशने पर पता चलता है कि अक्षर–ज्ञान में तो हमारे युवा पारंगत हैं, पर हाथों को हुनर का ज्ञान नहीं। ऐसे में हमारे युवा सिर्फ डिग्रीधारी बनकर रह गए हैं। गाँधी जी कहते हैं, ''उद्योग, हुनर, तंदुरुस्ती और शिक्षा, इन चारों का सुंदर समन्वय करना चाहिए। नई तालीम में उद्योग और शिक्षा तंदुरुस्ती एवं हुनर का सुंदर समन्वय है। इन सबके मेल से माँ के पेट में आने के समय से लेकर बुढ़ापे तक का एक खूबसूरत फूल तैयार होता है।यही नई तालीम है।''

स्कूलों की पाठ्य–पुस्तकों के बारे में गाँधी जी का कथन है कि–''इसमें कोई सन्देह नहीं कि आम स्कूलों में जो पुस्तकें खास–तौर पर बच्चों के लिए इस्तेमाल की जाती हैं, वे यदि हानिकारक नहीं होती हैं तो अधिकांश में निकम्मी अवश्य होती हैं। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनमें से बहुत–ही होशियारी के साथ लिखी जाती हैं। जिन लोगों और जिन परिस्थितियों के लिए वे लिखी जाती हैं, उनके लिए वे सबसे अच्छी भी हो सकती हैं, परन्तु वे भारतीय लड़कों और लड़कियों के लिए और भारतीय परिस्थितियों के लिए नहीं लिखी जाती। जब वे इस तरह लिखी जाती हैं तो वे आम तौर पर अधकचरी नकल होती हैं और उनसे विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती।इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पुस्तकों की आवश्यकता विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों के लिए अधिक है और प्रत्येक शिक्षक को, यदि अपने विद्यार्थियों के प्रति वह पूरा न्याय करना चाहता है,उपलब्ध सामग्री से अपना दैनिक पाठ खुद तैयार करना होगा। इसे भी उसे अपनी कक्ष की विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना होगा। सच्ची शिक्षा का काम, शिक्षा पाने वाले लड़कों और लड़कियों के उत्तम गुणों को बाहर लाना है। यह काम विद्यार्थियों के दिमाग में अनाप–शनाप और अनचाही जानकारी ठूँस देने से कभी नहीं हो सकता। इस तरह की जानकारी एक जड़ बोझ बन जाती हैं, जो उनकी सारी मौलिकता को कुचल डालती है और उन्हें निरी मशीनें बना देती हैं।'' (हरिजन, 1.12.33)

अध्यापक कैसे हो? के पारिपेक्ष्य में बापू का कहना है कि–''इस सम्बन्ध में मैं इस पुराने विचार का मानने वाला हूँ कि उन्हें अध्यापन, अध्यापन–कार्य के लिए अपने अनिवार्य प्रेम के कारण ही करना चाहिए और इस कार्य से अपने जीवन–निर्वाह के लिए जितना आवश्यक हो, उतना ही लेकर सन्तुष्ट रहना चाहिए। रोमन कैथोलिकों में यह विचार अभी तक बचा रहा है और वे दुनिया की कुछ सर्वोत्तम संस्थाएँ चला रहे हैं। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने तो और भी ऊँचा आदर्श स्वीकार किया था। वे विद्यार्थियों को अपने परिवार में ही शामिल कर लेते थे।''(यंग इंडिया, 6.8.25)

महात्मा ने शिक्षा–शास्तियों को सम्बोधित करते हुए उनसे अपील में करते है– ''मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है, न स्थूल शरीर है और न केवल हृदय या आत्मा ही है। सम्पूर्ण मनुष्य को निर्माण के लिए तीनों के उचित और एकरस मेल की जरूरत होती है और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है। शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक की या प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्घाटित किया जाये और बाहर प्रकाश में लाया जाये। अक्षर–ज्ञान न तो शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है और न उसका आरम्भ। वह तो मनुष्य की षिक्षा के कई साधनों में से केवल एक साधन है। अक्षर–ज्ञान अपने आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं बच्चे की षिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरम्भ करे, उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करूँगा। इस प्रकार की शिक्षा–प्रणाली में मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास सम्भव है। अलबत्ता, प्रत्येक दस्तकारी आजकल की तरह

निरे यांत्रिक ढंग से सिखाकर वैज्ञानिक तरीके पर सिखानी पड़ेगी, अर्थात् बालक को प्रत्येक क्रिया का क्यों और कैसे बताना होगा?हाथ का काम इस सारी योजना का केन्द्र–बिन्दु होगा। हाथ की तालीम का मतलब यह नहीं होगा कि विद्यार्थी पाठशाला के संग्रहालय में रखने लायक वस्तुएँ बनायें या ऐसे खिलौने बनायें, जिनका कोई मूल्य नहीं। उन्हें ऐसी वस्तुएँ बनाना चाहिए, जो बाजार में बेची जा सकें। कारखानों के प्रारम्भिक काल में जिस तरह बच्चे मार के भय से काम करते थे, उस तरह हमारे बच्चे यह काम नहीं करेंगे। वे उसे इसलिए करेंगे कि इससे उन्हें आनन्द मिलता है और उनकी बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है।''

''मैं भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त में दृढ़तापूर्वक विश्वास रखता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि इस लक्ष्य को पाने का सिर्फ यही एक रास्ता है कि हम बच्चों को कोई उपयोगी उद्योग सिखायें और उसके द्वारा उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का विकास सिद्ध करें। ऐसा किया जाये तो हमारे गाँवों के लगातार बढ़ रहे नाश की प्रक्रिया रुकेगी और ऐसी न्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था की नींव पड़ेगी, जिसमें अमीरों और गरीबों के अस्वाभाविक विभेद की गुंजाइश नहीं होगी और हर एक को जीवन–मजदूरी और स्वतन्त्रता के अधिकारों का आश्वासन दिया जा सकेगा।''

''गांधी जी हिन्द स्वराज में प्रश्नोत्तरी के माध्यम से तालीम अर्थात शिक्षा को स्पष्ट करते हुए कहते है कि तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षरज्ञान हीं हो, तो वह तो एक साधन जैसी हीं हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा उपयोग भी हो सकता है। एक शस्त्र (औजार) से चीर–फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और वहीं शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर–ज्ञान का भी ऐसा हीं है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते हीं हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण (मुकाबले) में कम हीं लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर–ज्ञान से दुनिया को फायदे के बदले नुकसान हीं हुआ है।''

''शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर–ज्ञान हीं होता है। लोगों को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक–प्रायमरी–शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियावी ज्ञान है। अपने माँ–बाप के साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्री के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेष आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है वहाँ उसकी चालढाल कैसी होनी चाहिए, इस सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन वह अपने दस्तखत करना नहीं जानता। इस आदमी को आप अक्षर–ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन सी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालत के बारे में आप उसके मन में असंतोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो तो भी उसे अक्षर–ज्ञान देनें की जरूरत नहीं है। पश्चिम के असर के नीचे आकर हमने यह बात चलायी है कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। लेकिन उसके बारे में हम आगे–पीछे की बात सोचते हीं नहीं।''

''अब ऊँची शिक्षा को लें। मैं भूगोल–विद्या सीखा, खगोल–विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्योमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, भूगर्भ–विद्या को भी मैं पी गया। लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौन सा भला किया? अपने आसपास के लोगों का क्या भला किया? किस मकसद से मैंने वह ज्ञान हालिस किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज

विद्वान (हक्सली) ने शिक्षा के बारे में यों कहा हैः ''उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी (इन्साफ को परखने वाली)'' है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनाएँ बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी हीं सच्चा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जाएगा, क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेंगा।''

सन्दर्भ

1. मेरी जीवन कथा–मोहनदास करमचंद्र गांधी, सरल संक्षिप्त और स्वाध्याय–भारतन कुमारप्पा मुद्रक और प्रकाशक–विवेक जितेन्द्र देसाई, नवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद 380014
2. गाँधी जी का जीवन प्रभात–अत्मकथा के आधार पर संग्रहक–अशोक,प्रकाशक–सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, एन–77 पहली मंजिल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली 110001
3. सर्वोदय–गाँधी जी, सम्पादक–भारतन कुमारप्पा,मुद्रक ओर प्रकाशक–विवेक जितेन्द्र देसाई, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद 380014
4. आरोग्य की कुंजी–गाँधी जी, अनुवादिका –सुशीला नययर,नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद 380014
5. दैनिक जागरण –दिनांक 03.06.2021
6. दैनिक जागरण – दिनांक 06.06.2021 सप्तरंग